प्रगतिशील कविता के ऐतिहासिक संदर्भ

(डॉ. सरिता)

हिन्दी साहित्य की आधुनिक काव्यधारा में प्रगतिशील और प्रगतिवाद की चर्चा होती है। इसलिए प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन के दौरान यह विवाद का विषय भी रहा कि प्रगतिशीलता और प्रगतिवाद का स्वरूप क्या है और हिन्दी साहित्य में इनकी क्या मान्यताएँ हैं। यदि गहराई से प्रगतिशील साहित्यान्दोलन के आरम्भिक रूप को देखा जाये तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उस समय जो साहित्य भारत की जातीय संस्कृति का नेतृत्व करता है वह प्रगतिशील है और जो मार्क्सवादी विचारधारा का अनुकरण करता है, वह साहित्य प्रगतिवादी साहित्य है। प्रेमचन्द द्वारा व्यक्त किए गये ये विचार भारतीय जनमानस और संस्कृति के अनुरूप हैं। भारतीय संदर्भों के अनुरूप विषय ही प्रगतिशील कविता का सृजन कर सकते हैं।

भारतीय परम्परा में सामाजिक विकास कारक और आधार मौजूद हैं। समाज में प्रगति केवल व्यवस्था के प्रतिक्रियात्मक रूप से ही नहीं आती, वह समाज के वर्गों और समुदायों की स्थितियों में भौगोलिक जरूरतों के परिवर्तन से आती है। समाज में वैचारिक स्वाधीनता, सृजनशीलता, सांस्कृतिक उत्कर्ष और समाज की खुशहाली आदि प्रगतिशील तत्व हैं। प्रगतिशीलता को वाद, विवाद, मत और अवधारणा से जैसे ही परिभाषित किया जाता है तो इसका स्वरूप तकनीकी होकर प्रगतिवाद के रूप में सामने आता है। साहित्य का उद्‌भव सामाजिक परिवेश की पारिस्थितिकी पर निर्भर करता है और हर एक समाज की अपनी स्थितियाँ होती हैं। परन्तु जब किसी आन्दोलन की चर्चा होती है तो उस समय के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक घटनाक्रमों का विश्लेषण किया जाता है। समय की जरूरतों ने साहित्य सृजन में बदलाव की अपेक्षा की, इसका कारण यह भी था कि हिन्दी साहित्यकार वैश्विक स्तर व्यापक राजनैतिक और साहित्यिक परिवर्तनों से अधिक प्रभावित प्रभावित था और वह ऐसा ही बदलाव हिन्दी में करना चाहता था। छायावादी कवि पंत, निराला के अतिरिक्त राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा आदि कवि प्रगतिशील काव्यधारा की ही देन हैं। इस समय पाश्चात्य चिंतक कार्ल मार्क्स के दर्शन से हिन्दी साहित्य भी अछूता नहीं था। उनके वैज्ञानिक भौतिकवाद के दर्शन ने सामाजिक विकास की नई व्याख्या दी, इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी कविता में सृजन की शास्त्रीय मान्यताएँ खत्म होने लगी और कविता की नई संरचना का निर्माण हुआ जिसका स्वर प्रतिक्रियात्मक था। इसकी पृष्ठभूमि में राजनैतिक खेमेबन्दी भी उत्तरदायी थी। नागपुर में आयोजित 'भारतीय साहित्य परिषद' के अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू, प्रेमचन्द, नरेन्द्र देव, अख्तरहुसेन रायपुरी और मौलवी अब्दुलहक के हस्ताक्षरों के माध्यम से एक प्रस्ताव पारित किया गया और यह बाद में जुलाई 1936 में 'विशाल भारत' के अंक में प्रकाशित हुआ।

नागपुर अधिवेशन का यह प्रभाव हुआ कि हिन्दी के प्रगतिशील कवियों को मार्क्सवादी विचारधारा ने अपनी ओर मोड़ लिया। यह स्वाभाविक भी था कि कविता को ऐसी विषयों की प्रस्तुति का माध्यम बना दिया गया जो व्यवस्था के प्रतिकूल थें और आम आदमी के नजदीक थे। कविता का यह दोहरा स्वरूप विषय और भाषा के स्तर पर देखा जा सकता है। सांस्कृतिक संगठनों जैसे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज के कारण भी समाज में नई जागृति और चेतना पैदा हुई जिसके फलस्वरूप आम जन की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति कविता का आधार बनी। आयातित विचार किसी भी देश के हों यदि वे समाज के हित में हैं, कवि उसी को अभिव्यक्त करने लगा –

प्रगतिशील कविता के कई बुनियादी आधार रहे हैं, जिनमें एक प्रमुख समाज का वर्गीय स्वरूप और उसका अन्तर्विरोध है। यह अन्तर्विरोध उस समय के प्रगति और पुनरूत्थान के तत्वों के मिश्रण का था। इसी के सामंजस्य बैठाना उस समय के साहित्यकारों के लिए चुनौति थी। कला और साहित्य के माध्यम से इसे और व्यापक रूप में प्रसारित किया गया ताकि समाज में प्रगतिशील शक्तियों की सही पहचान की जा सके। तत्कालीन राजनैतिक निर्णय, विविध सांस्कृतिक संगठनों का उदय और स्थानीय स्तर पर समाचार पत्रों का

उदय आदि घटनाक्रम ने प्रगतिशील साहित्य की भूमि को तैयार किया। यूरोपीय समाज में सामन्तवाद के विरोध में आन्दोलन चले जिसका प्रभाव भारत के साहित्यकारों पर पड़ा, जिसके फलस्वरूप सामन्तवादी मूल्यों– अंधविश्वास, शोषण और शक्ति का केन्द्रीकरण के विरोध में साहित्यिक अभिव्यक्ति की शुरूआत हुई। परन्तु इस समय की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि प्रगतिशील आन्दोलन जिन शक्तियों के हाथ में था वे गैर साम्यवादी लेखकों को अपने साथ जोड़ने में विफल रहे, जिसके कारण प्रगतिशील साहित्य आगे चलकर कोरा प्रगतिवादी साहित्य में परिवर्तित हो गया। गांधीवाद सुधारवाद और समाजवाद का मार्क्सवादी विचारधारा के आधार पर अघोषित विभाजन हो गया। समय के साथ–साथ यह और अधिक प्रौढ़ होता गया, इसी की प्रतिक्रिया को 1945 के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में देखा गया जिसमें रामधारी सिंह का अध्यक्षीय भाषण पूरी तरह प्रगतिवाद के विरोध था–

दिनकर जी का वक्तव्य भारतीय जनसंवेदनाओं का आग्रह करता है। किसी भी दर्शन एवं विचार को समाज के सापेक्ष रूप में देखने की आवश्यकता है। सामाजिक प्रतिबद्धता साहित्य लेखन का बुनियादी आधार होता है, यदि प्रगतिशील साहित्य में यह विशुद्ध रूप में दिखाई देता तो आधुनिक कविता को अनेक प्रयोगों और नारों से नहीं गुजरना होता। फलस्वरूप कविता का बाहरी ढांचा ही ध्वस्त नहीं हुआ, अपितु वह विचार प्रधान मात्र बन कर रह गयी। इसकी टीस 'आलोचना' पत्रिका के अप्रैल–जून 1970 के संपादकीय में दिखाई दी– प्रगतिशील कविता में विषय–वस्तु की दृष्टि से काफी समयानुकूल परिवर्तन होते गए–

प्रगतिशाील कविता का व्यवहार सामाजिक अस्तित्व और सम्मान के संरक्षण पर बल देता है। जहाँ एक ओर राष्ट्रवादी स्वर का उद्घोष दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सोहनलाल द्विवेद्वी और सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में प्रस्फुटित हुआ वहीं त्रिलोचन, नागार्जुन, मुक्तिबोध और केदारनाथ अग्रवाल ने प्रगतिशीलता और प्रगतिवाद के बीच संतुलन बनाने का प्रयास किया। माखनलाल चतुर्वेदी की 'मरण त्यौहार' 'कैदी और कोकिला' तथा रामधारी सिंह दिनकर की 'नई दिल्ली के प्रति' आदि कविताएँ समाज की प्रगतिशीलता के नए मानकों का निर्माण करती हैं। सुमित्रानंदन पंत एक सीमा तक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का समर्थन तो करते हैं, परन्तु भारतीय परिवेश में उसे मानव सत्ता की प्रतिष्ठा का पूर्ण दर्शन स्वीकार नहीं करते। स्पष्ट है कि प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन कोरा वाद या विचार पर आधारित नहीं था, इसमें वे सभी लोक संवेदनाएँ भी अभिव्यक्त हुई जो जन अपेक्षाओं की पूरक रही हैं। दूसरी ओर प्रगतिवादी विचारधारा का निर्वाह भी कम नहीं था, इसमें सामाजिक यथार्थ के साथ–साथ साम्यवादी विचारधारा की भी स्थापना दिखाई देती है। रांघेय राघव ने इस पर 'अजेय खण्डहर' शीर्षक से खण्डकाव्य लिखा। शिवमंगल सिंह सुमन ने लाल फौज की वीरता के गीत लिखे, वहीं नरेन्द्र शर्मा ने 'लाल विनाश', 'बुलावा' मुक्तिबोध ने 'लाल सलाम' सोहनलाल द्विवेद्वी ने 'सोवियत रूस' नाम से अपनी रचनाएँ लिखकर प्रगतिशील काव्यधारा से अलग मार्ग का भी चयन किया।

हिन्दी साहित्य में 1936 से 1942 तक के कालखण्ड को प्रगतिशील साहित्य के तौर पर जाना जाता है। निश्चित रूप से साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव इस साहित्य पर पड़ा, परन्तु नई कविता के मंच से जब प्रगतिवाद को मृत घोषित कर दिया उसी समय प्रगतिशील लेखक संघ की भूमिका कमजोर हो जाती है। यहाँ तक आते–आते हिन्दी कविता में साम्यवादी चिंतन न केवल अपने सिद्धान्तों को खो चुका था, बल्कि व्यावहारिक रूप से भी पाठक साहित्य में कुछ नयेपन की तलाश में था। नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल आदि ही प्रगतिशीलता के आचरण को बनाने का प्रयास कर रहे थे। प्रगतिशील कविता अपने शुरूआती स्तर से अपनी छवि को निर्मित करती है।

अंत में प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन अपने विशिष्ट योगदान के लिए इस कारण से जाना जाता है कि इसका उद्भव समाज के बीच में से हुआ और समाज अपेक्षित रूपों की अभिव्यक्ति का आधार बना। यदि राजनैतिक और आर्थिक आधारों को छोड़ दिया जाये तो इसमें पहली बार मनुष्य के आस–पास के परिवेश को यथार्थ रूप में प्रस्तुति मिली। यद्यपि शिष्टता और शाश्वता का क्षरण वैचारिक प्रभाव के कारण निरन्तर बना रहा। छायावादी काव्य में जिस लाक्षणिकता और लयात्मकता वस्तु–शिल्प दिखाई देता वह प्रगतिशील काव्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति के कारण नकार दिया गया।